5. 'बहता पानी निर्मला' - यात्रा - संस्मरण की विशेषताएं लिखिए। (15)

अथवा

'रूढ़ि और मौलिकता' का सार अपने शब्दों में लिखिए।

[This question paper contains 8 printed pages.]

Your Roll No.....

Sr. No. of Question Paper : 10054 **K**

Unique Paper Code : 2053100020

Name of the Paper : Sachidanand Heeranand Vatsyayan Agyey

Name of the Course : **B.A. (Hons.) Hindi**

Semester : VII

Duration : 3 Hours Maximum Marks : 90

छात्रों के लिए निर्देश

1. इस प्रश्न-पत्र के मिलते ही ऊपर दिए गए निर्धारित स्थान पर अपना अनुक्रमांक लिखिए।
2. **सभी** प्रश्न अनिवार्य हैं।

1. सप्रसंग व्याख्या कीजिए : (10×3=30)

(क) हरी बिछली घास।

दोलती कलगी छरहरी बाजरे की।

अगर मैं तुम को ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका

अब नहीं कहता,

या शरद के भोर की निहार-न्हायी कुईं,

टटकी कली चम्पे की, वगैरह, तो

नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या सूना है

या कि मेरा प्यार मैला है।

बल्कि केवल यही: ये उपमान मैले हो गये हैं।

देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच।

कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

अथवा

हारिल को यह सह्य नहीं है- वह पौरुष का मदमाता है:

इस जड़ धरती को ठुकरा कर उषा-समय वह उड़ जाता है।

'बैठो, रहो, पुकारो-गाओ, मेरा वैसा धर्म नहीं है;

2. अज्ञेय की काव्यगत विशेषताओं का विवेचन कीजिए। (15)

अथवा

प्रयोगवाद एवं अज्ञेय के संबंध को रेखांकित कीजिए।

3. 'यह दीप अकेला' कविता की मूल-संवेदना स्पष्ट कीजिए। (15)

अथवा

'शब्द और सत्य' कविता में निहित भावबोध पर विचार कीजिए।

4. 'अपने-अपने अजनबी' उपन्यास के आधार पर सेल्मा का चरित्र-चित्रण कीजिए। (15)

अथवा

खितीन बाबू-मानवीय बोध, प्रगतिशील सोच और जिजीविषा से भरी कहानी है - स्पष्ट कीजिए।

पहाड़ उसे अधिक प्रिय है या सागर, इसका उत्तर वह नहीं दे पाया है; स्वयं अपने को भी। वह सर्वदा हिमालय के हिम शिखरों की ओर उन्मुख कुटीर में रहने की कल्पना किया करता है और जब-तब उधर कदम भी बढ़ा लेता है; पर दूसरी ओर वह भागता है बराबर सागर की ओर, उसके उद्वेलन से एकतानता का अनुभव करता है। शान्त सागर-तल उसे विशेष नहीं मोहता-चट्टानों पर लहरों का घात-प्रतिघात ही उसे मुग्ध करता है। सागर में वह दो बार डूब चुका हैय चट्टानों की ओट से सागर-लहर को देखने के लोभ में वह कई बार फिसल कर गिरा है और दैवात् ही बच गया है। पर मनःस्थिति ज्यों-की-त्यों है: वह हिमालय के पास रहना चाहता है पर सागर के गर्जन से दूर भी नहीं रहना चाहता! कभी हँस कर कह देता हैरूष्मेरी कठिनाई यही है कि भारत का सागर-तट सपाट दक्षिण में है-कहीं पहाड़ी तट होता तो।"

मैं हारिल हूँ, बैठे रहना मेरे कुल का कर्म नहीं है।

तुम प्रिय की अनुकम्पा माँगो, मैं माँगूँ अपना समकक्षी

साथ-साथ उड़ सकने वाला एकमात्र वह कंचन-पक्षी!'

यों कहता उड़ जाता हारिल ले कर निज भुज-बल का सम्बल,

किन्तु अन्त सन्ध्या आती है-आखिर भुज-बल है कितना बल?

(ख) एक अन्तहीन, परिवर्तनहीन धुँधली रोशनी, जो न दिन की है, न रात की है, न सन्ध्या के किसी क्षण की ही है - एक अपार्थिव रोशनी जो कि शायद रोशनी भी नहीं है; इतना ही कि उसे अन्धकार नहीं कहा जा सकता। हमेशा सुनती आयी हूँ कि कब्र में बड़ा अँधेरा होता है, लेकिन यहाँ उसकी भी असम्पूर्णता और विविधता है। शायद यही वास्तव में मृत्यु होती है, जिसमें कुछ भी होता नहीं, सब कुछ होते-होते रह जाता है। होते-होते रह जाना ही मृत्यु का विशेष रूप है जो मनुष्य के लिए चुना गया है जिसमें कि विवेक है, अच्छे-बुरे का बोध है। यह उसमें न होता तो उसका मरना सम्पूर्ण हो सकता। जो चुकता वह

सम्पूर्ण चुक जाताय या जो रहता उसका बना रहना भी असंदिग्ध होता। यह हमारे युगों से सँचे हुए नीति-बोध की सजा है कि हमारा मरना भी अधूरा ही हो सकता है- मरकर भी कुछ हिसाब बाकी रह जाता है।

अथवा

जब कोई अंग कटता है, तो उसमें से आत्मा सिमट कर बाकी शरीर में आ जाती है, पंगु नहीं होती। यह थ्योरी कहाँ तक मान्य है, इस बहस में तो वैज्ञानिक पड़ें, पर उनको देखते हुए उनके बारे में जरूर इसकी सच्चाई मानो ज्वलन्त होकर सामने आ जाती थी, उनकी आत्मा न केवल पंगु नहीं थी, वरन् शरीर के अवयव जितने कम होते जाते थे, उसमें आत्मा की कान्ति मानों बढ़ती जाती थी मानो व्यर्थ से सिमट-सिमटरकर आत्मा बचे हुए शरीर में और घनी पुंजित होती जाती-सारे शरीर में भी नहीं, एक अकेली आँख में- प्रेतात्माओं से भरे हुए विशात्र शून्य में निष्कम्प दिपते हुए एक आकाश-दीप के समान...।

(ग) रूढ़ि की रुढ़िग्रस्त परिभाषा हमें छोड़नी होगी; हमें उदार दृष्टिकोण से उसका नया और विशालतर अर्थ लेना होगा। हमें सबसे पहले यह समझना होगा कि रूढ़ि अथवा परम्परा कोई बनी-बनायी चीज नहीं है जिसे साहित्यकार ज्यों-का-त्यों पा या छोड़ सकता है, मिट्टी के लोंदे की तरह अपना या फेंक सकता है। हमें यह किंचित् विस्मयकारी तथ्य स्वीकार करना होगा कि परम्परा स्वयं लेखक पर हावी नहीं होती, बल्कि लेखक चाहे तो परिश्रम से उसे प्राप्त कर सकता है, लेखक की साधना से ही रूढ़ि बनती और मिलती है। और हम यह भी सिद्ध करेंगे कि रूढ़ि की साधना साहित्यकार के लिए वांछनीय ही नहीं, साहित्यिक प्रौढ़ता प्राप्त करने के लिए अनिवार्य भी है।

अथवा